शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

परसाई जी के व्यंग्य संग्रह 'ऐसा भी सोचा जाता है' में सामाजिक यथार्थ

बिपन कुमार महतो (शोधार्थी)
हिन्दी विभाग
रांची विश्वविद्यालय
रांची, झारखंड, भारत

शोध संक्षेप

व्यंग्य साहित्य आधुनिक काल की सबसे लोकप्रिय विधा है। बीसवीं शताब्दी में हिन्दी में गद्य साहित्य की विविध विधाओं का विकास हुआ है। उसमें व्यंग्य अपनी अद्भुत शैली के कारणसाहित्य की सभी विधाओं में स्प्रिरीट (आत्मा) के समान प्रयोग किया जाता है। परसाई जी ने व्यंग्य के द्वारा समाज में फैली हुई विकृतियों असंगतियों की और पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। हरिशंकर परसाई व्यंग्य के शिखर पुरूष माने जाते हैं। व्यंग्य को विधा के रूप में स्थापित करने में परसाई का अमूल्य योगदान है। प्रस्तुत शोध पत्र में हरिशंकर परसाई के व्यंग्य संग्रह 'ऐसा भी सोचा जाता है' में संग्रहीत व्यंग्य रचनाओं के द्वारा जातिवाद, ब्राह्मणवाद, फिजूलखर्ची, औपचारिकता, वर्ण-व्यवस्था, शिक्षण-व्यवस्था, पृथक्तावाद, अंधविश्वास आदि मानव जीवन की तमाम विसंगतियों की ओर संकेत किया है।

व्यंग्य साहित्य की प्राथमिकता

व्यंग्य अभिव्यक्ति का माध्यम है। व्यंग्य द्वारा लोगों की कुत्सित मानसिकता को बदला जा सकता है। इसके प्रहार से विसंक्रमित व्यक्ति भी चंगा हो जाता है। व्यंग्य लोंगों को सचेत करने का सबसे कारगर माध्यम है। व्यंग्य द्वारा कही गयी बात लोगों के दिल में सीधे लगती है और वे सोचने के लिए मजबूर हो जाते हैं कि बात में कितनी वास्तविकता है। व्यंग्य लोगों को जगाने अथवा जागरूक करने का काम करता है। परसाई जी ने इस संदर्भ में लिखा है, "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है। विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है।"[1]

व्यंग्य का प्रयोग सुधारवादी होना चाहिए न कि लोगों की क्षुद्रता दिखाने के लिए। अधिकतर देखा जाता है कि व्यंग्य के द्वारा लोगों का उपहास किया जाता है। जो ठीक नहीं है। व्यंग्य का कार्य सच्चे मित्र के समान होना चाहिए। जो मित्र को सन्मार्ग की ओर जाने को प्रेरित करता है। जिस पर व्यंग्य किया जाए उनको भी लगना चाहिए कि जो कहा जा रहा है उसमें वास्तव में सच्चाई है। व्यंग्य को सच्चाई का प्रतीक माना जा सकता है। सच्चाई के बारे में कहा जाता है कि सच्चाई कड़वी होती है, किन्तु व्यंग्य सच्चाई को बिना किसी कड़वाहट के प्रकट करने की क्षमता रखता है।

'ऐसा भी सोचा जाता है' में सामाजिक यथार्थ

यथार्थ शब्द का अर्थ है जैसा अर्थ है अथवा जैसा है। समाज में घटित होनेवाली घटनाओं का यथावत चित्रण करना सामाजिक यथार्थ है। इसमें कल्पना और आदर्श को महत्व नहीं दिया जाता है। यथार्थ सत्य का ही दूसरा रूप है, जो वास्तविक है अथवा जो हो रहा है। वही यथार्थ है। अंग्रेजी में यथार्थ के लिए 'रियालिटी' शब्द का प्रयोग किया जाता है। भगवतीचरण वर्मा के

अनुसार, "यथार्थ वह सब है जो इस विश्व में स्वभाविक रूप से घटित होता रहता है, जहाँ बुद्धि का अनुशासन नहीं है। यथार्थ मूल रूप से मानव के अस्तित्व का सत्य है।"[2]

परसाई जी ने भी इसी स्वाभाविकता का चित्रण किया है जो समाज में घटित हो रहा है। 'ऐसा भी सोचा जाता है' व्यंग्य संग्रह में परसाई जी ने समाज में फैली धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक विकृतियों पर पैनी चोट की है।

इस व्यंग्य संग्रह का पहला व्यंग्य है 'इस तरह गुजरा जन्मदिन'। जिसमें लेखक ने जन्मदिन को आधार बनाकर लोगों की फिजूलखर्ची, खानापूर्ति, कोरी नैतिकता पर कड़ा प्रहार किया है। लोगों के दुखः का एक बड़ा कारण यह है कि व्यक्ति जितनी आमदनी नहीं करता, उससे ज्यादा खर्च कर देता है। 'दो नाक वाले लोग' व्यंग्य में भी परसाई ने मध्य वर्गीय लोगों की इस झूठी शान की सख्त निंदा की है। हरिशंकर परसाई फिजूलखर्ची के सख्त खिलाफ हैं, "लेख छपे तो मुझे बधाई देने मित्र और परिचित आये। मैंने बहुत मिठाई मंगा ली थी। मैंने भूल की। मिलने वाले में चार-पाँच मिठाई के डिब्बा लाये। इतने में सब निपट गये। अगले साल मैंने सिर्फ तीन-चार के लिए ही मिठाई रखी। पाँचवे सज्जन मिठाई का बड़ा डिब्बा लेकर आये। फिर तो हर तीन-चार के बाद कोई मिठाई लिए नही आता है। मिठाई बहुत बच गई। चाहता तो बेच देता और मुआवजा वसूल लेता। ऐसा नही किया। परिवार और पड़ोस के बच्चे दो-तीन दिन खाते रहे।"[3]

इस व्यंग्य (इस तरह गुजरा जन्मदिन) में परसाई जी की यथार्थपरक दृष्टि देखने को मिलती है। लेखक को जन्मदिन आदि मनाने का कोई खास शौक नही था। वह उसके लिए किसी तामझाम की फिराक में नहीं रहते। इसके विपरीत अन्य लेखक जन्मदिन, स्वर्ण जयन्ती, हीरक जयन्ती आदि का बेसब्री से इंतजार करते हैं। अपनी फक्कड़ता का परिचय देते हुए परसाई जी लिखते हैं, ''धिक्कारते होंगे की कैसा निकम्मा लेखक है कि अधेड़ हो रहा है, मगर जन्मदिन मनवाने का इन्तजाम नही कर सका। इसका साहित्य अधिक दिनों तक टिकेगा नही। हाँ अपने जन्मदिन का इन्तजाम खुद करने वालों को मैंने देखा है। जन्मदिन ही क्यों स्वर्ण जयन्ती और हीरक जयन्ती भी खुद आयोजित करके ऐसा अभिनय करते हैं, जैसे दूसरे लोग उन्हे यह कष्ट दें रहे है।"[4]

परसाई जी के व्यंग्य पात्र अधिकतर निम्नमध्य वर्ग से हैं। उन्होंने दैनिक जीवन में आनेवाली छोटी से छोटी विसंगतियों की और पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। 'ऐसा भी सोचा जाता है' व्यंग्य संग्रह में आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार की विसंगतियों पर प्रहार किया गया है। औपचारिकता, धार्मिक आडम्बर, फिजूलखर्ची आदि विसंगतियों से समाज को सचेत करने का यथेष्ट प्रयास किया है।

हरिशंकर परसाई यथार्थवादी व्यक्तित्व के धनी हैं। सच बात को वे बेहिचक स्वीकार करते हैं। बचपन में उनके पिताजी द्वारा 2 साल उम्र घटाने के कारण को परसाई ने स्पष्ट रूप से कहा है, ''मेरी जन्म-तारीख 22 अगस्त 1924 छपती है। यह भूल है। तारीख ठीक है। सन् गलत है। सही सन् 1922 है। मुझे पता नही मेट्रिक के सार्टिफिकेट में क्या है। मेरे पिता ने स्कूल में मेरी उम्र दो साल कम लिखाई थी, इस कारण कि सरकारी नौकरी के लिए मैं जल्दी 'ओवरएज' नहीं हो जाऊँ। मैंने उनकी इच्छा पूरी

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

की। मैं इस उम्र में भी दुनियादारी के मामले में 'अण्डरएज' हूँ।"[5]

परसाई जी ने धर्म के क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों की कटु आलोचना की है। सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि अवसरों पर लोगों के लिए जो अनावश्यक नियम बनाये गए हैं, वे परसाई जी को फूटी आँख नहीं सुहाते। उन्होंने इस वैदिक परम्परा की कड़ी आलोचना की हैं, ''सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण के घंटों पहले उसके 'वेद' लग जाते हैं, ऐसा पंडित बताते हैं। वेद के समय लोग कुछ नही खाते। 'वेद' यानी वेदना। राहु, केतु के दाँत गड़ते होंगे न। मेरा खाना-पीना तो नही छूटा वेद की अवधि में, पर आशंका रही कि इस साल क्या करने वाले हैं यार लोग।"[6] परसाई जी की वैज्ञानिक दृष्टि का पता इससे सहज ही लगाया जा सकता है कि सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण में किसी राहु-केतु का कोई प्रकोप नहीं होता।

हरिशंकर परसाई बाह्य आडंबर के सख्त विरोधी हैं। वे किसी प्रकार की औपचारिकता को अपने पास नहीं टिकने देते हैं। लोग उनकी खुशामद करें, ये उनको बिल्कुल पसंद नहीं। अपने एक जन्मदिन का उल्लेख करते हुए परसाई जी लिखते हैं कि किस तरह उन्होंने अपने मित्र द्वारा लिफाफे में दिए हुए रुपये सहज स्वीकार कर लिए थे, ''मैं सोकर उठा ही था कि पड़ोस में रहने वाले एक दम्पति आ गये। मुझे गुलदस्ता भेंट किया और एक लिफाफा दिया। बोले हेप्पी बर्थडे। मैनी हेप्पी रिटर्न्स। ... गुलदस्ता मैंने टेबल पर रख दिया। उसके बगल मे लिफाफा रख दिया। खोला नहीं। समझा शुभकामना का कार्ड होगा। पर मैंने लक्ष्य किया कि दम्पति का मन बातचीत में नहीं लग रहा है। वे चाहते हैं कि मैं लिफाफा खोलूँ। मैंने खोला। उसमें से एक हजार एक रुपये के नोट निकले। मैंने इसकी क्या जरूरत है, जैसे फालतू वाक्य बोले बिना रुपये रख लिये।"[7]

धार्मिक अमंगल जैसे मृत्यु बोध आत्मा की अमरता आदि पर परसाई जी का विश्वास नहीं था। आत्मा की सूक्ष्मता पर व्यंग्य करते हुए लेखक कहते हैं कि, ''मृत्यु भय से बचने के लिए तरह-तरह की बातें कही जाती हैं। शरीर मरता है, आत्मा तो अमर है। व्यास ने कृष्ण से कहलाया है, जैसे आदमी पुराने वस्त्र त्याग कर नये वस्त्र ग्रहण करता है, वैसे ही आत्मा एक शरीर त्याग कर दूसरे शरीर धारण कर लेती है। मगर ऐसी सूक्ष्म आत्मा को क्या चाटे ? ऐसी आत्मा न खा-पी सकती है, न भोग कर सकती है, न फिल्म देख सकती है।"[8] इस तरह आत्मा की सूक्ष्मता के प्रति व्यंग्यकार ने अपना असंतोष प्रकट किया है।

'किस भारत भाग्य विधाता को पुकारें' इस संग्रह का दूसरा व्यंग्य है, जिसमें परसाई जी ने जातिवाद, अलगाव, पृथतावाद और लघुता पर व्यंग्य कसा है। जातिवाद के संबंध में चर्चा करते हुए परसाई जी कहते हैं, ''लोग कहते हैं इस देश में दो विचारधारा प्रबल है कान्यकुब्जवाद और कायस्थवाद। मुझे तब पता चला कि जयप्रकाश कायस्थ हैं, जब उत्तरप्रदेश की कायस्थ सभा ने उनका सम्मान करने की घोषणा की। वे कायस्थ कुल भूषण घोषित होने वाले थे। ऐसे ही कोई कान्यकुब्ज शिरोमणि हो जाएगा। आप ही हो जाइये।"[9]

पृथक्तावाद के संबंध में लेखक ने एक पात्र के माध्यम से कहलवाया है कि भारतीय राज्य के व्यक्ति एक राज्य से दूसरे राज्य में रहते हैं। यदि उनको जाति या किसी कारणवश पृथक कर दिए जाए तो वे कहाँ जायेंगे ? परसाई जी ने इस संदर्भ में व्यंग्य कसा है, "हमारी हालत

फिलिस्तीनियों जैसी है। हमारी भूमि उत्तरप्रदेश में कान्यकुब्ज छूट गई है। हम लोग दूसरों के राज्य में रह रहे हैं। सिख पंजाब चाहते हैं, कश्मीरी कश्मीर चाहते हैं, नेपाली गोरखालैण्ड चाहते हैं। हमारा कोई राज्य कोई देश नहीं है। हमारे राज्य पर ठाकुर यादव कब्जा किए हुए हैं। अगर राज्यों में 'कान्यकुब्ज वापस जाओ' आन्दोलन हुआ तो हम कहाँ जायेंगे। यह राज्य हमारा नहीं, आगे चलकर पंजाब या असम जाने के लिए पासपोर्ट लेना होगा। हो सकता है, हमारे ही घर उत्तरप्रदेश जाने के लिए पासपोर्ट लेना पड़े। मध्यप्रदेश समुद्र के किनारे भी नहीं है कि कहीं भाग जायें।"[10]

हरिशंकर परसाई जाति की संकीर्णता को नहीं मानते हैं। उनके कायस्थ और कान्यकुब्ज मित्र अपनी जाति के वर्णसंकर हो जाने के भय से चिंतित होते थे, परन्तु इस संबंध में परसाई जी बेफिक्र रहते थे-"मैंने कहा पर एक बात है। मेरा एक भानजा बंगाली कायस्थ लड़की से ब्याहा है, और भानजी क्षत्रीय से।

वे बोले- यानी वर्णसंकर ? मैंने कहा- आगे तो सुनिये, हम अंतरराष्ट्रीय ब्राह्मण हैं। हमारी जाति में अन्तर्जातीय ही नहीं अन्तर्महाद्वीपीय शादी हो चुकी है। उन्नीसवीं सदी के अन्त में हमारी जाति की गंगाबाई ने एक अंग्रेज अफसर से शादी की थी। एक तरह से हम एंग्लो इंडियन ब्राह्मण हैं।"[11]

इस प्रकार परसाई जी अपनी जाति को अन्तरराष्ट्रीय, अन्तर्महाद्वीपीय ब्राह्मण मानते हैं। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार पूर्णतः असम्भव है। अभी बहुत-सी चीजे अंतरराष्ट्रीय हो गयी हैं। जैसे हाथ लगाना, हाथ मिलाना, चैट का इस्तेमाल समझकर करखानों में आवश्यक है।

पिछले कुछ वर्षो में असामाजिक शक्तियों ने समाज को खोखला कर दिया है। वर्तमान में जो लोग सदाचारी हैं, उनका समाज में कोई सम्मान नहीं है। लोग उन्हे अपमानित करते हैं, धिक्कारते हैं, जबकि घूसखोर, बदमाश दूसरों को लूटकर हवेली में रहते हैं। परसाई जी ने ऐसे लोगो की सख्त आलोचना की है, "समाज में धन्य और धिक्कार की शक्ति होती है। ये सामाजिक सदाचार बनाये रखती है। मैंने पिछले कुछ सालों में समाज को इन शक्तियों को खाते देखा है। या गलत प्रयोग करते देखा गया है। जो चालीस साल पहले धिक्कार पाते थे, वे धन्य पाने लगे हैं। और जिन्हें धन्य मिलता था, वे अपमानित, पीड़ित और अवहेलित हैं।"[12]

भारत में जातिवाद एक बड़ी गंभीर समस्या है। यहाँ पायी जाने वाली विविध जातियाँ एक दूसरे से हमेशा लड़ती-झगड़ती रहती हैं। ब्राह्मण आदि को ऊंची जाति समझा जाता है, जबकि चमार आदि को निम्न जाति कहकर उनका शोषण किया जाता है। हरिशंकर परसाई ने ब्राह्मणवाद और जातिवाद के संदर्भ में प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' का उदाहरण देकर व्यंग्य कसा है कि मातादीन ब्राह्मण पुरोहित की रखैल चमार जाति की है, फिर भी समाज में उसकी प्रतिष्ठा बरकरार है, क्योंकि वह हैसियत वाला है और परम्परा से पूजनीय है, "मातादीन से कोई कहता है- 'तुम चमारिन के साथ सोते हो, तो तुम्हारी जाति नहीं चली गई ? मातादीन का जवाब है - जाति क्यों जायेगी ? मैं उसके हाथ की रोटी तो नहीं खाता। क्या तर्क है ? चमारिन का थूक चाटने में जाति नहीं जाती। उसकी हाथ की रोटी खाने से जाती है। अगर किसी नीची जाति का आदमी धन और सत्ता सम्पन्न हो जाये, तो वह ब्राह्मणी को रखैल रख सकता है।"[13]

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

जातिवाद या भेदभाव की मूल जड़ लोगों की आर्थिक स्थिति से है। जिसकी जैसी आर्थिक स्थिति है समाज में वैसे ही वह इज्जत पाता है। अगर नीची जाति के व्यक्ति भी धन और सत्ता सम्पन्न हो तो वह अच्छी समझी जाने वाली जाति पर राज कर सकता है, "शोषण करने वाला जाति नहीं देखता। वह सब जातियों का शोषण करता है। कारखाने का मालिक यह भेद नहीं करता कि ब्राह्मण ठाकुर का कम शोषण करो, चमार का ज्यादा करो। व्यापारी यह ख्याल नहीं करता कि ग्राहक किस जाति का है। वह सब जातियों से खरीदारी करता है। गाँवों में बड़े किसानों के खेतों पर खेत मजदूर चाहे ब्राह्मण हो जाट हो, ठाकुर हो या चमार हो - वह सबका शोषण करता है। वह अपनी जाति के मजदूरों का भी शोषण करता है।"[14]

अर्थात् शोषण करने वाला जाति नहीं देखता। वर्ग-संघर्ष और वर्ण-संघर्ष में अंतर है। जातियों में भी जिसकी लाठी उसकी भैंस उक्ति सटीक बैठती है। अछूतों में भी जो बलशाली है, उनकी ब्राह्मण भी इज्जत करते हैं। उनकी इज्जत सब जातियां करती हैं - "इन नीची जातियों में बहुत सारे डाकू, लुटेरे, अपराधकर्मी हो जाते हैं। इनमें जो अपहरण करके फिरौती का दावा पेश करते हैं, उनकी वेदपाठी ब्राह्मण भी इज्जत करते हैं, और करोड़पति व्यापारी भी। अछूतों में जो बलशाली आतंकवादी हो जाते हैं, उनकी इज्जत सब जातियाँ करती हैं। यह उनके आतंक से पैदा हुई इज्जत है। तुलसीदास ने कहा है - भय बिन होय न प्रीत।"[15]

निष्कर्ष

परसाई जी ने व्यंग्य के माध्यम से समाज में फैली तमाम विसंगतियों यथा वर्ण-व्यवस्था, जातिवाद, ब्राह्मणवाद, अंधविश्वास, फिजूलखर्ची, शिक्षण-व्यवस्था आदि पर तीखा वार किया है। परसाई ने इन विसंगतियों की यथार्थ स्थिति का चित्रण करके स्पष्ट कर दिया है कि इन्हें दूर किये बिना विकास नहीं हो सकता। परसाई जी ने उन क्षेत्रों को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है, जिनका समाज सीधे सरोकार है। उन्होंने व्यक्ति के दोहरे चरित्र को भी उजागर किया है। इससे समाज पतन की ओर अग्रसर हो रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 सदाचार का तावीज, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ 10
2 साहित्य के सिद्धांत तथा रूप, भगवतीचरण वर्मा, पृष्ठ 51
3 ऐसा भी सोचा जाता है, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ 10
4 वही, पृष्ठ 9
5 वही, पृष्ठ 10
6 वही, पृष्ठ 10
7 वही, पृष्ठ 11
8 वही, पृष्ठ 11-12
9 वही, पृष्ठ 14
10 वही, पृष्ठ 14-15
11 वही, पृष्ठ 15
12 वही, पृष्ठ 26-27
13 वही, पृष्ठ 30
14 वही, पृष्ठ 31
15 वही, पृष्ठ 31